एल. आई. सी. ऑफ इंडिया

बनाम

आर. सुरेश

(दीवानी अपील सं. 2004/2008)

14 मार्च, 2008

[एस. बी. सिन्हा और वी. एस. सिरपुरकर, जे. जे.]

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 - धारा 11ए - प्रत्यर्थी, अपीलार्थी जो कि 1956 के अधिनियम के तहत गठित और निगमित एक निगम है, में विकास अधिकारी है - उसके विरूद्ध विभागीय कार्यवाही - जांच अधिकारी ने उसे कार्य में लापरवाही का दोषी पाया लेकिन उसे न्यासभंग एवं कूटरचना के आरोप से दोषमुक्त किया - प्रत्यर्थी को बर्खास्त किया - उसने औद्योगिक विवाद उठाया - औद्योगिक न्यायाधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि बर्खास्तगी की सजा बहुत कठोर थी और प्रत्यर्थी को पुनः, भले ही बिना बकाया वेतन दिये, नियुक्त करने का आदेश दिया गया - इस बात पर विवाद हुआ कि क्या औद्योगिक अधिकरण के पास इस विवाद का क्षेत्राधिकार था और क्या उसका सजा की मात्रा में हस्तक्षेप करना न्यायोचित था - निर्धारित - अधिनियम 1956 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो सिविल न्यायालय और/अथवा औद्योगिक न्यायालय के

क्षेत्राधिकार को हटाये - अतः, क्षेत्राधिकार के निष्कासन के विरूद्ध प्रकल्पना उत्पन्न होती है - धारा 11ए के संदर्भ में औद्योगिक न्यायालय विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है - ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में, दुराचार की प्रकृति, पक्षकारों का आचरण, प्रक्रिया जिसमें जांच की कार्यवाही आयोजित की गई प्रासंगिक कारक माने जा सकते है - दिए गए मामलों में, आनुपातिकता के सिद्धांत को भी लागू किया जा सकता है - औद्योगिक न्यायालय का क्षेत्राधिकार व्यापक होने के कारण और उसे सज़ा के बिन्दु पर हस्तक्षेप करने की शक्ति प्रदान की गई है, यह आरोपों की प्रकृति के अनुसार हो सकती है, ताकि इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि क्या प्रत्यर्थी ने अपने पद का दुरुपयोग किया है या उसके कृत्य उसके नियोक्ता द्वारा उसे दिए गए न्यास का भंग हैं - जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956।

प्रत्यर्थी को अपीलार्थी, जो कि जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 के तहत गठित और निगमित एक निगम है, में विकास अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था। उनके खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू की गई। जांच अधिकारी ने उन्हे लापरवाही के आरोपों के अन्तर्गत दोषी पाया लेकिन न्यासभंग और कूटरचना के आरोपों में दोषमुक्त किया। उनके द्वारा अपीलार्थी/निगम के विरूद्घ एक औद्योगिक विवाद उठाया गया। औद्योगिक अधिकरण ने पाया कि बर्खास्तगी की सजा बेहद कठोर है और उन्हे सेवा में बिना बकाया वेतन दिये, पुनः बहाल करने का आदेश दिया।

इस बात पर विवाद हुआ कि क्या औद्योगिक अधिकरण के पास इस विवाद का क्षेत्राधिकार था और क्या उसका सजा की मात्रा में हस्तक्षेप करना न्यायोचित था।

अपीलार्थी का तर्क है कि वर्ष 1981 में संशोधित अधिनियम 1956 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, औद्योगिक विवाद अधिनियम , 1947 (संक्षेप में "1947 अधिनियम") के प्रावधान लागू नहीं होंगे और प्रतिवादी, किसी भी स्थिति में, एक विकास अधिकारी होने के नाते, एक श्रमिक नहीं था और इस प्रकार, अधिकरण प्रबंधन द्वारा दी गई सजा की मात्रा में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।

दूसरी ओर, प्रत्यर्थी ने आग्रह किया कि अधिकरण का क्षेत्राधिकार केवल सेवा के नियमों और शर्तों के संबंध में हटा दिया जाएगा, ना कि इस प्रकार की परिस्थिति में; इस न्यायालय के विभिन्न निर्णय हैं, जहां एलआईसी के विरुद्ध एक औद्योगिक विवाद पर विचार किया गया है और न्यासभंग व कूटरचना का आरोप, जो कि मुख्य आरोप है उसमें प्रत्यर्थी को दोषमुक्त कर दिया गया, अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिकरण ने अधिनियम 1947 की धारा 11ए के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए सजा की मात्रा में हस्तक्षेप करने में कोई अवैधता की है।

अपील को खारिज करते हुए न्यायालय ने यह निर्धारित किया:

अभिनिर्धरित : 1.1 भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में एलआईसी एक "राज्य" है । अधिनियम 1956 के तहत इसके कर्तव्य और कार्य प्रदान किए गए हैं। 1956 अधिनियम के तहत अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा लिया गया निर्णय साधारणतः मुकदमे का विषय हो सकता है। हालाँकि, सिविल न्यायालय एक सीमित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है। यद्यपि, यदि संबंधित कर्मचारी 1947 अधिनियम के प्रावधानों के तहत एक 'कर्मचारी' है, तो सामान्य कानून उपायों के अलावा उसका उपचार औद्योगिक न्यायालय के समक्ष भी हो सकता है। जब कोई अधिकार सामान्य विधि के अंतर्गत दो क़ानूनों के तहत अर्जित होता है, तो संबंधित कर्मचारी के पास अपना मंच चुनने का विकल्प होगा। [पैरा 11 व 12] [217 जी और एच, 218 सी, डी और ई]

1.2 1956 के अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके तहत सिविल न्यायालय और/या औद्योगिक न्यायालय का अधिकार क्षेत्र वर्जित किया गया हो। अब यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को हनन करने वाले किसी भी प्रावधान का कठोर निर्वचन किया जावेगा।क्षेत्राधिकार के निष्कासन के विरुद्ध एक धारणा उत्पन्न होती है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 में निहित प्रावधानों और साथ ही 1947 अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, प्रावधानों को इस तरह से समझने का प्रयास किया जाना चाहिए ताकि क्षेत्राधिकार विषय को बरकरार रखा जा सके, हालांकि, क्षेत्राधिकार का निष्कासन या तो स्पष्ट

रूप से या आवश्यक रूप से विवक्षित होना चाहिये। [पैरा 12 व 13] [218 एफ, जी, और एच, 219 डी]

1.3 औद्योगिक न्यायालय के क्षेत्राधिकार को केवल तभी बाहर माना जाना चाहिए जब कर्मचारी द्वारा मांगा गया उपाय औद्योगिक कानूनों के तहत एक अधिकार पर आधारित हो जो कि किसी कर्मचारी, एजेंट या एलआईसी को दिए गए अधिकारों के विपरीत हो। [पैरा 13] [219 एच, 220 ए]

1.4 यदि 1956 अधिनियम के तहत बनाए गए नियम सेवा समाप्ति के आदेश की वैधता या वैधानिकता के सवाल पर जाने के लिए औद्योगिक न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार के विपरीत नहीं हैं, तो हम यह देखने में असमर्थ हैं कि औद्योगिक न्यायालय का अधिकार क्षेत्र कैसे बेदखल कर दिया गया है। [पैरा 14] [220 E&F]

1.5 अधिनियम की धारा 11ए के संदर्भ में एक औद्योगिक न्यायालय विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है। निस्संदेह, विवेक का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए। यह सनक या मनमर्जी पर आधारित नहीं हो सकता। [पैरा 16] [221 D]

1.6 पुनः, सभी प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में, कथित कदाचार की प्रकृति, पार्टियों का आचरण, जिस तरह से जांच कार्यवाही की

गई थी, उसे एक प्रासंगिक कारक माना जा सकता है। किसी आशयपूर्वक किया गया कदाचार अधिकतम सजा का हकदार है। प्रत्येक मामले का निर्णय उसके अपने तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। दिए गए मामलों में, आनुपातिकता के सिद्धांत को भी लागू किया जा सकता है।[पैरा 16] [221 E & F]

1.7 औद्योगिक न्यायालय का क्षेत्राधिकार व्यापक होने के कारण और उसे सज़ा के बिन्दु पर हस्तक्षेप करने की शक्ति प्रदान की गई है, यह आरोपों की प्रकृति के अनुसार हो सकती है, ताकि इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि क्या प्रतिवादी ने अपने पद का दुरुपयोग किया है या उसके कृत्य उसके नियोक्ता द्वारा उसे दिए गए न्यास का भंग हैं। [पैरा 17] [222 H, 223A]

1.8 इसके अलावा, हालांकि, प्रतिवादी 1987 से सेवा से बाहर है। वह पहले ही 20 वर्षों से अधिक समय तक सेवा से बाहर रहने के कारण बहुत कुछ झेल चुका है। सभी अदालतों ने उनके पक्ष में फैसला सुनाया है। इस प्रकार, हमें नहीं लगता कि यह एक उपयुक्त मामला होगा जहां हमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिये।[पैरा 19] [223 C&D]

एम वेणुगोपाल बनाम डिविजनल मैनेजर, भारतीय जीवन बीमा निगम, मच्छीलीपट्टनम, ए.पी. व अन्य **[1994] [2 SCC 323];** एस.के

वर्मा बनाम महेश चंद्र व अन्य **[AIR 1984 SC 1462];** द्वारका प्रसाद अग्रवाल बनाम रमेश चंद्र अग्रवाल **[2003 (6) SCC 220];** ए.वी. नचाने व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य **[1982] 1 SCC 205;** भारतीय जीवन बीमा निगम व अन्य बनाम राघवेन्द्र शेषगिरी राव कुलकर्णी **(1997 8 SCC 461;** भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पालीटाना शूगर मील प्रा. लि. व अन्य **(2003) 2 SCC 111;** दीपक चंद रूहिदास बनाम चंदन कुमार सरकार **(2003) 7 SCC 66;** मुकेश कुमार त्रिपाठी बनाम सीनियर डिविजनल मैनेजर, एल.आई.सी. व अन्य **(2004) SCC 387;** हरियाणा शहरी विकास प्राधिकरण बनाम सौरभ अग्रवाल **(2005) 9 SCC S48;** भारत संघ व अन्य बनाम जे. अहमद **[(AIR 1979 SC 1022];** आई.टी.सी. लिमिटेड मोग्यार, बिहार बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, पटना, बिहार **(1978) 3 SCC 504** एवं सुरेश पथरेला बनाम आॅरियन्टल बैंक ऑफ काॅमर्स **(2006) 10 SCC 572- referred to.**

जी.पी. सिंह प्रिंसीपल ऑफ स्टेच्यूटोरी इंटरप्रिटेशन **11th Ed., pg. 707-•referred to.**

सिविल अपीलाण्ट ज्यूरिक्डिशन: सिविल अपील नंबर 2004/2008

W.A. सं. 3360/2001 में केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम के अंतिम निर्णय व आदेश दिनांक 03-02-2006 से

के. रामामूर्ति, एस. राजप्पा व श्रीराम अपीलार्थी की ओर से

जी.प्रकाश प्रत्यर्थी की ओर से

न्यायालय का निर्णय पारित किया गया

एस.बी. सिन्हा, जे.

1.क्या भारतीय जीवन बीमा निगम, जो कि जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 के तहत गठित और निगमित एक निगम है, द्वारा पारित बर्खास्तगी के आदेश के संबंध में औद्योगिक न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को हटा दिया गया है, यह इस अपील में शामिल प्रश्न है जो, एर्नाकुलम में केरल उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा दिनांक 3.2.2006 को पारित एक निर्णय और आदेश, से उठता है।

2. यहां प्रत्यर्थी को अपीलकर्ता के विकास अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था। उनके खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू की गयी, आरोपों की धाराएं तय की गईं इसका पाँचवाँ हिस्सा है, एक प्रस्ताव पर हस्ताक्षर की कूटरचना। जांच अधिकारी के अनुसार, प्रत्यर्थी अपने कर्तव्यों के पालन में लापरवाह था क्योंकि उसने संबंधित व्यक्ति के विवरण को व्यक्तिगत रूप से सत्यापित नहीं किया था और पूरी तरह से एजेंट के प्रतिनिधित्व पर भरोसा किया था। जांच अधिकारी ने उन्हें पहले चार आरोपों में दोषी पाया, लेकिन पांचवें आरोप में उन्हें दोषमुक्त कर दिया। उन्हें अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दिनांक 19.4.1989 के एक आदेश द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था।

3. उनके द्वारा एक औद्योगिक विवाद उठाया गया था। उपयुक्त सरकार ने औद्योगिक अधिकरण के निर्णय के लिए निम्नलिखित विवाद को संदर्भित किया,

''क्या 19.04.1989 से विकास अधिकारी श्री आर. सुरेश को सेवा से हटाने में भारतीय जीवन बीमा निगम, तिरुवनंतपुरम के प्रबंधन की कार्यवाही उचित है? यदि नहीं तो कर्मकार किस राहत का हकदार है।''

4. दिनांक 6.2.1993 के एक अधिनिर्णय द्वारा, यह मानते हुए कि आरोप 1 से 4 के संबंध में प्रत्यर्थी के खिलाफ गृह जांच आयोजित करने के मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया गया है, लेकिन आरोपों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए -प्रतिवादी की स्वीकारोक्ति के अनुसार, यह माना गया-

> ''IV. निश्चय ही मृत व्यक्ति के नाम पर पॉलिसी जारी करने से प्रबंधन को कोई मौद्रिक हानि नहीं हुई और कर्मचारी को कोई मौद्रिक लाभ नहीं हुआ। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रबंधन के पुनालुर शाखा कार्यालय के वरिष्ठ शाखा प्रबंधक ने जांच अधिकारी के समक्ष गवाही दी है कि ''कर्मचारी ने यह जानते हुए कि पार्टी मर चुकी है, जानबूझकर प्रस्ताव सुरक्षित नहीं किया है। लेकिन उन्होंने सही तथ्यों की पुष्टि नहीं करने में लापरवाही बरती है,

इसीलिए कहा जाता है कि उनकी कार्य आदत असंतोषजनक है। उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि कर्मचारी ने जानबूझकर पॉलिसी सुरक्षित नहीं की, लेकिन उसकी लापरवाही के कारण सब कुछ हुआ। ऊपर उल्लिखित विनियम संख्या 21 और 24 के अनुसार प्रबंधन निगम का प्रत्येक कर्मचारी ईमानदारी और निष्ठा से निगम की सेवा करेगा और कर्तव्य आदि के प्रति पूर्ण सत्यनिष्ठा और समर्पण बनाए रखेगा, और विनियमन 39 (1) के अनुसार प्रबंधन को निगम के नियमों का उल्लंघन करने पर दंड देने का अधिकार है और सजा में बर्खास्तगी भी शामिल थी। लेकिन जैसा कि वरिष्ठ शाखा प्रबंधक ने बताया था, कर्मचारी ने प्रस्ताव हासिल करने में लापरवाही बरती थी, जिसके परिणामस्वरूप एक मृत व्यक्ति के नाम पर पॉलिसी जारी कर दी गई थी। यह ध्यान रखने योग्य है कि प्रबंधन के साथ उनकी केवल दो वर्ष की सेवा थी और उस अवधि के दौरान उनके खिलाफ वर्तमान आरोप को छोड़कर अन्य कोई शिकायत नहीं थी। लेकिन यह कदाचार उनकी लापरवाही के कारण हुआ, जैसा कि वरिष्ठ शाखा प्रबंधक ने स्वीकार किया। इन सभी पहलुओं पर ध्यानपूर्वक विचार करने पर मेरा विचार है कि बर्खास्तगी की सजा इतनी कठोर है कि उसे कायम रखा नहीं जा सकता। प्रबंधन इन पहलुओं पर

> विचार करने में विफल रहा और कम सजा देने में विफल रहा। हालाँकि, काम करने वाले को उसके खिलाफ साबित हुए कदाचार के लिए किसी भी सजा के बिना नहीं छोड़ा जा सकता है। अपनी नौकरी छूटने और बकाया वेतन और अन्य सभी मौद्रिक लाभ न मिलने के कारण उन्हें जो पीड़ा और दर्द झेलना पड़ा, वह मेरे अनुसार अब उनके खिलाफ साबित हुए कदाचार के लिए पर्याप्त सजा होगी। इसके अधीन उसे सेवा में फिर से बहाल करने का आदेश दिया जाता है।"

5. अपीलकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की गई थी। अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क भी उठाया गया कि औद्योगिक अधिकरण के पास इस मामले में कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। उच्च न्यायालय के समक्ष इस न्यायालय के एम. वेणुगोपाल बनाम मंडल प्रबंधक, भारतीय जीवन बीमा निगम, मछलीपट्टनम, ए.पी. और अन्य, (1994) 2 एससीसी 323 के निर्णय का हवाला दिया गया -

उच्च न्यायालय ने कहा कि उक्त निर्णय का वर्तमान मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं है, यह कहते हुए:-

> ".....यह भी माना गया कि एक बार धारा 2 (सीसी) लागू नहीं होने पर, धारा 25-एफ लागू करने का कोई सवाल ही नहीं है, जिसके आधार पर परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवा

> की समाप्ति को अवैध माना जा सकता है। इसलिए न्यायालय ने पाया कि अधिकरण के समक्ष कार्यवाही उचित नहीं थी। वहां फिर से तर्क यह है कि कर्मचारी विनियमन के प्रावधानों और औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों के बीच टकराव के मामले में, पूर्व ही मान्य होगा।''

एस. के. वर्मा बनाम महेश चंद्र एवं अन्य [ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1462] में इस न्यायालय के निर्णय पर निर्भर करते हुए यह निर्धारित किया गया था;

> "...... विकास अधिकारियों की नियुक्ति से संबंधित नियमों और शर्तों पर विचार करने के बाद यह पाया गया कि विकास अधिकारी, एलआईसी का एक पूर्णकालिक कर्मचारी, जो स्थानांतरण के लिए उत्तरदायी है, से उम्मीद की जाती है कि वह एजेंटों पर कोई प्रशासनिक नियंत्रण न रखते हुए उनकी सहायता करेगा और उन्हें प्रेरित करेगा। एजेंट उसके अधीनस्थ नहीं हैं। इन परिस्थितियों में, वह प्रशासनिक या प्रबंधकीय कैडर का व्यक्ति नहीं है और इस तरह उसे औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(एस) के अर्थ के तहत एक श्रमिक माना जाता है।"

इस प्रश्न के संबंध में कि क्या औद्योगिक अधिकरण द्वारा सजा की मात्रा में हस्तक्षेप करना न्यायोचित था, यह राय दी गई थी–

> "19. उपरोक्त निष्कर्ष एक ऐसे मामले में दिए गए थे जहाँ प्रबंधन ने आरोप लगाया कि उसके चार कर्मचारियों ने न्यास भंग किया और वर्ष 1977-78 की अवधि के दौरान 24,239.97 रुपये और 19,884.06 रुपये की दो राशियों का दुर्विनियोग किया। स्टॉक के सत्यापन पर माल की कमी पाने के आधार पर आरोप स्थापित किए गए थे। जब दुर्विनियोग का आरोप साबित हो जाता है, तो प्रबंधन द्वारा दी गई पदच्युति की सजा में हस्तक्षेप करने का निश्चित रूप से कोई औचित्य नहीं है। लेकिन, हस्तगत मामले में, दुर्विनियोग का कोई आरोप नहीं है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, निगम को दोषपूर्ण क्षति नहीं हुई और न ही प्रतिवादी संख्या २ को कोई दोषपूर्ण लाभ हुआ। जो कुछ भी साबित हुआ वह केवल लापरवाही थी। आरोप संख्या 5 में कथित न्यास भंग और कूटरचना का आरोप पहले से ही पाया गया था और केवल लापरवाही से उत्पन्न हुए लघु आरोप साबित हुए। ऐसी परिस्थिति में, उपरोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निष्कर्षों को उचित रूप से लागू नहीं किया जा सकता।"

6. इसके विरुद्ध दायर एक अंतर-न्यायालय अपील पर, उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने उक्त दृष्टिकोण की पुष्टि की।

7. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील, श्री के. राममूर्ति ने प्रस्तुत किया:

(i) वर्ष 1981 में संशोधित अधिनियम 1956 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (संक्षेप में "1947 अधिनियम") के प्रावधान लागू नहीं होंगे।

(ii) प्रतिवादी, किसी भी स्थिति में, एक विकास अधिकारी होने के नाते, एक श्रमिक नहीं था और इस प्रकार, अधिकरण प्रबंधन द्वारा दी गई सजा की मात्रा में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।

8. दूसरी ओर, प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील, श्री जी. प्रकाश ने आग्रह किया−

(i) अधिकरण का क्षेत्राधिकार केवल सेवा के नियमों और शर्तों के संबंध में हटा दिया जाएगा, ना कि इस प्रकार की परिस्थिति में।

(ii) इस न्यायालय के विभिन्न निर्णय हैं, जहां एलआईसी के विरुद्ध एक औद्योगिक विवाद पर विचार किया गया है।

(iii) आरोप संख्या 5 मुख्य आरोप है और प्रतिवादी को उससे दोषमुक्त कर दिया गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिकरण ने

अधिनियम 1947 की धारा 11ए के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए सजा की मात्रा में हस्तक्षेप करने में कोई अवैधता की है।

9. भारत में अधिनियम 1956 जीवन बीमा व्यवसायों के राष्ट्रीयकरण के लिए ऐसे सभी व्यवसायों को उद्देश्य के लिए स्थापित एक निगम को हस्तांतरित करने और निगम के व्यवसाय के विनियमन और नियंत्रण और उससे जुड़े मामलों के लिए प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया था।

धारा 3 के अंतर्गत भारतीय जीवन बीमा निगम की स्थापना एवं निगम का प्रावधान है।

धारा 4 के अंतर्गत निगम के गठन का प्रावधान है। अधिनियम के अध्याय III में आने वाली धारा 6 अन्य बातों के साथ-साथ बीमा में व्यवसाय चलाने और किसी भी अन्य व्यवसाय को चलाने के लिए जो निगम को सुविधाजनक रूप से चलाने में सक्षम प्रतीत हो सकता निगम के कार्यों की गणना करती है।

अधिनियम की धारा 48 केंद्र सरकार को नियम बनाने का अधिकार देती है। धारा 48 की उप-धारा (2) उस शक्ति की गणना करती है जिसके संबंध में केंद्र सरकार विशेष रूप से और धारा 1 के तहत उसे प्रदत्त शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना नियम बना सकती है। धारा 48 की उप-धारा (2) का खंड (सीसी) इस प्रकार है: -

> "(सीसी) निगम के कर्मचारियों और एजेंटों की सेवा के नियम और शर्तें, जिनमें वे लोग भी शामिल हैं जो इस अधिनियम के तहत नियत दिन पर निगम के कर्मचारी और एजेंट बन गए हैं"

अधिनियम की धारा 48 की उपधारा (2बी) स्पष्ट करती है कि वे कौन से मामले होंगे जो निम्नलिखित शर्तों में उपधारा (2) के खंड (सीसी) द्वारा सम्मिलित किए जाएंगे-

10. एक वैध क़ानून के माध्यम से, उप-धारा (2सी) को भी अधिनियमित किया गया था, जो अधिनियम की धारा 48 की उप-धारा (2बी) के संदर्भ में बनाए गए किसी भी नियम को पूर्वव्यापी प्रभाव देता है।

11. भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में एलआईसी एक "राज्य" है । अधिनियम 1956 के तहत इसके कर्तव्य और कार्य प्रदान किए गए हैं। हालाँकि, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2 (जे) में निहित "उद्योग" की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए, यह जीवन बीमा निगम के कार्यों को अपने दायरे से बाहर नहीं ले जा सकता है।

12. औद्योगिक कानून के तहत, और विशेष रूप से 1947 अधिनियम के तहत, उसमें निर्दिष्ट अधिकारियों, उपयुक्त सरकारों और औद्योगिक न्यायालयों को विभिन्न कार्य करने होते हैं। इसके अंतर्गत नियम एवं शर्तें

निर्धारित की जा सकती हैं। सेवा के नियमों और शर्तों का उल्लंघन भी न्यायसंगत है। अधिनियम के तहत सुरक्षा उपाय प्रदान करने के लिये यह सुनिश्चित किया गया है कि किसी कर्मचारी की सेवाएं अन्यायपूर्ण ढंग से समाप्त नहीं की जाएं। 1947 का अधिनियम सेवा समाप्ति की व्यापक परिभाषा प्रदान करता है। इसके तहत सेवा समाप्ति की पूर्ववर्ती शर्तें प्रदान की गई हैं। 1956 अधिनियम के तहत अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा लिया गया निर्णय साधारणतः मुकदमे का विषय हो सकता है। हालाँकि, सिविल न्यायालय एक सीमित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है। यद्यपि, यदि संबंधित कर्मचारी 1947 अधिनियम के प्रावधानों के तहत एक 'कर्मचारी' है, तो सामान्य कानून उपायों के अलावा उसका उपचार औद्योगिक न्यायालय के समक्ष भी हो सकता है। जब कोई अधिकार सामान्य विधि के अंतर्गत दो क़ानूनों के तहत अर्जित होता है, तो संबंधित कर्मचारी के पास अपना मंच चुनने का विकल्प होगा।

धारा 48 नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है। उप-धारा (2) का खंड (सीसी) केवल केंद्र सरकार को कार्पोरेशन के कर्मचारियों और एजेंटों की सेवा के नियम और शर्तें निर्धारित करने का अधिकार देता है। अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके तहत सिविल न्यायालय और/या औद्योगिक न्यायालय का अधिकार क्षेत्र वर्जित किया गया हो। अब यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को हनन करने वाले किसी भी प्रावधान का कठोर निर्वचन किया जावेगा।

क्षेत्राधिकार के निष्कासन के विरुद्ध एक धारणा उत्पन्न होती है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 में निहित प्रावधानों और साथ ही 1947 अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, प्रावधानों को इस तरह से समझने का प्रयास किया जाना चाहिए ताकि क्षेत्राधिकार विषय को बरकरार रखा जा सके, हालांकि, क्षेत्राधिकार का निष्कासन या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक रूप से विवक्षित होना चाहिये।

द्वारका प्रसाद अग्रवाल बनाम में. रमेश चंद्र अग्रवाल [(2003) 6 एससीसी 220], में यह निर्धारित किया गया था कि: -

> "22. पार्टियों के बीच विवाद स्पष्ट रूप से एक सिविल विवाद था न कि कंपनी अधिनियम के प्रावधानों के तहत विवाद । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 सिविल प्रकृति के सभी विवादों को निर्धारित करने के लिए सिविल न्यायालयों को क्षेत्राधिकार प्रदान करती है, जब तक वह किसी क़ानून के तहत या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ से वर्जित न है। किसी सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर वर्जन का तुरंत अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर वर्जन के प्रावधानों के लिए कठोर व्याख्या की आवश्यकता है। यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय उस

> अर्थान्वयन के पक्ष को अपनायेगी जो कि सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार के प्रतिधारण को बनाये रखे।"

13. हमने यहां पहले भी अवलोकित किया है कि 1956 के अधिनियम में सिविल कोर्ट या औद्योगिक न्यायालय के क्षेत्राधिकार को बाहर करने वाला कोई प्रावधान नहीं है। इसलिए, प्रश्न यह होगा कि क्या अधिकार क्षेत्र को निष्कासित आवश्यक निहितार्थ से किया गया है। उक्त प्रयोजन हेतु अधिनियम की धारा 48 की उपधारा (2) के खण्ड (सीसी) का निर्वचन आवश्यक है। यह कहना एक बात है कि नियम कर्मचारियों की सेवा के नियम और शर्तें प्रदान कर सकते हैं, किंतु दूसरी तरफ एक व्यक्ति स्वतंत्र मंच के समक्ष अपनी शिकायतों का निपटारा कराने के लिए न्याय तक पहुंच के अपने मानवीय अधिकार का लाभ उठाने का हकदार है। जैसा कि सर्वविदित है, न्याय तक पहुंच एक मूल्यवान अधिकार है।

जीपी सिंह के पाठ्य का निर्वचन, वैधानिक व्याख्या के सिद्धांत के 11वां संस्करण, पृ. *707* में "एक मजबूत धारणा है

> "कि सिविल अदालतों के पास सिविल प्रकृति के सभी प्रश्नों को तय करने का अधिकार क्षेत्र है। इसलिए सिविल अदालतों के अधिकार क्षेत्र के बहिष्कार का तुरंत अनुमान नहीं लगाया जा सकता है और इस तरह के बहिष्कार को या

> तो "स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए या स्पष्ट रूप से विवक्षित होना चाहिए।"

इस प्रकार के अर्धान्वयन से और इस प्रकृति के मामले में व्याख्या के उपरोक्त सिद्धांत को लागू करते हुए, औद्योगिक न्यायालय के क्षेत्राधिकार को केवल तभी बाहर माना जाना चाहिए जब कर्मचारी द्वारा मांगा गया उपाय औद्योगिक कानूनों के तहत एक अधिकार पर आधारित हो जो कि किसी कर्मचारी, एजेंट या एलआईसी को दिए गए अधिकारों के विपरीत हो।

श्री के. राममूर्ति द्वारा एवी नचाने और अन्य बनाम भारत संघ व अन्य पर भरोसा रखा गया है। [(1982) 1 एससीसी 205]। यह न्यायालय अधिनियम की धारा 48(2सी) की वैधता से चिंतित था । यह माना गया कि अपीलकर्ता भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के विरोध को प्रकट करने के लिए पर्याप्त सामग्री रिकॉर्ड में लाने में सक्षम नहीं था।

14. यह प्रश्न एम. वेणुगोपाल के मामले में भी विचार में लिया गया, क्या किसी कर्मचारी की छंटनी अधिनियम की धारा 25 एफ के तहत वैधानिक आवश्यकताओं के अनुपालन से पहले होनी चाहिए, हालांकि इस पर एक विधिक शक्ति मौजूद है जो इस तरह की समाप्ति को प्रभावित करने के लिए अधिनियम के तहत विद्यमान है। यह माना गया कि 1956 का अधिनियम 1947 के अधिनियम पर प्रभावी होगा, जिसमें कहा गया है कि

> "14. कार्पोरेशन अधिनियम की धारा 48 में पेश किए गए संशोधनों ने औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों को स्पष्ट रूप से बाहर कर दिया है, जहां तक कि वे धारा 48(2)(सीसी) के तहत बनाए गए नियमों के साथ विपरीत में हैं ।"

इसलिए, यदि 1956 अधिनियम के तहत बनाए गए नियम सेवा समाप्ति के आदेश की वैधता या वैधानिकता के सवाल पर जाने के लिए औद्योगिक न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार के विपरीत नहीं हैं, तो हम यह देखने में असमर्थ हैं कि औद्योगिक न्यायालय का अधिकार क्षेत्र कैसे बेदखल कर दिया गया है। भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य बनाम राघवेंद्र शेषगिरि राव कुलकर्णी [(1997 8 एससीसी 461], भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पलिताना शुगर मिल (पी) लिमिटेड और अन्य [(2003) 2 एससीसी 111] और दीपक चंद्र रूहीदास बनाम चंदन कुमार सरकार [(2003) 7 एससीसी 66], इन पर भी विचार किया गया है।

उपरोक्त प्रत्येक निर्णय केवल उपरोक्त सिद्धांतों को दोहराता है और इन पूर्वाव्याप्त स्थिति में भी 1956 अधिनियम के तहत बनाए गए नियम लागू माने गए थे।

15. एसके वर्मा (सुप्रा) में एक विकास अधिकारी को भी "कर्मचारी" माना गया है।

हालाँकि, हम मुकेश के. त्रिपाठी बनाम वरिष्ठ मंडल प्रबंधक, एलआईसी और अन्य [(2004) 8 एससीसी 387] मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले से अनभिज्ञ नहीं हैं, जिसमें हम में से एक (सिन्हा, जे.) सदस्य थे, जहां सवाल यह था कि क्या एक प्रशिक्षु 1947 अधिनियम की धारा 2(धारा 5) के प्रावधानों के अर्थ के भीतर एक कर्मचारी होगा। यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें प्रशिक्षु का मामला शामिल है।

16. हरियाणा शहरी विकास प्राधिकरण बनाम सौरभ अग्रवाल [(2005) 9 एससीसी 548], यह न्यायालय एक ऐसे कर्मचारी के मामले से निपट रहा था जिसकी सेवाएं गलत तरीके से समाप्त कर दी गई थीं और उसने अधिनियम की धारा 10 के तहत संदर्भ के लिए प्रार्थना की थी।

अधिनियम की धारा 11ए के संदर्भ में एक औद्योगिक न्यायालय विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है। निस्संदेह, विवेक का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए। यह सनक या मनमर्जी पर आधारित नहीं हो सकता।

पुनः निर्विवाद रूप से फिर से, सभी प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में, कथित कदाचार की प्रकृति, पार्टियों का आचरण, जिस तरह से जांच कार्यवाही की गई थी, उसे एक प्रासंगिक कारक माना जा

सकता है। किसी आशयपूर्वक किया गया कदाचार अधिकतम सजा का हकदार है। प्रत्येक मामले का निर्णय उसके अपने तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। दिए गए मामलों में, आनुपातिकता के सिद्धांत को भी लागू किया जा सकता है।

17. वास्तव में यह न्यायालय भारत संघ एवं अन्य बनाम. जे. अहमद [(एआईआर 1979 एससी 1022] ने कहा कि लापरवाही को अपने आप में कदाचार नहीं माना जा सकता है। न्यायालय ने कहा कि

> "1.1 हालाँकि, यह विश्वास करना कठिन है कि सार्वजनिक कार्यालय से जुड़े कर्तव्य के निर्वहन में दक्षता की कमी या उच्चतम मानकों की प्राप्ति वास्तव में कदाचार को निर्मित करेगी। कर्तव्य के प्रदर्शन में लापरवाही और कर्तव्य के पालन में चूक या विकासशील स्थिति का मूल्यांकन करने के निर्णय में त्रुटि कर्तव्य के निर्वहन में लापरवाही हो सकता है, लेकिन कदाचार नहीं होगा जब तक कि लापरवाही के लिए सीधे जिम्मेदार परिणाम ऐसे न हों कि अपूरणीय हों या परिणामी क्षति इतनी भारी हो कि दोषी होने की डिग्री बहुत अधिक हो। एक त्रुटि लापरवाही का संकेत हो सकती है और दोषी की डिग्री लापरवाही की गंभीरता का संकेत दे सकती है। लापरवाही अक्सर

> जानबूझकर की गई दुष्टता या द्वेष से अधिक नुकसान का कारण बन सकती है।"

आईटीसी लिमिटेड, मोंघिर, बिहार बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, पटना (बिहार), (1978) 3 एससीसी 504 में इस न्यायालय ने कहा कि लापरवाही को अपने आप में कदाचार नहीं माना जा सकता है: -

> "श्री पई ने प्रस्तुत किया कि काम की उपेक्षा भी स्थायी आदेश 20 के खंड (ii) के उप-खंड (1) के अर्थ के भीतर एक कदाचार हो सकता है, इसके अलावा यह स्थायी आदेश के खण्ड (1) के उप-खंड (बी) के अर्थ में एक गलती है कि पूर्व में 'आदतन' शब्द केवल 'लापरवाही' शब्द को योग्य बनाता है, न कि 'कार्य की उपेक्षा' अभिव्यक्ति को। इस तर्क को केवल खारिज करने के लिए कथित किया गया। केवल कार्य की उपेक्षा दोनों नहीं हो सकती। यदि ऐसा है, तो यह एक दोष है। यदि यह आदतन है, अर्थात यदि इसे कई बार दोहराया जाता है, तो यह केवल कदाचार है। यह किसी न किसी प्रकार का दोष भी हो सकता है, जैसा कि स्थायी आदेश 20(i) के खंड (ए) से (जी) में बताया गया है कि यदि एक से अधिक बार दोहराए जाते हैं तो स्थायी आदेश 20(ii)(1) के अर्थ के भीतर आदतन हो सकते हैं, और विशेष रूप से चौथे दोष के कदाचार के प्रकाश में

> स्थायी आदेश 20(ए) के अर्थ में, लेकिन इस मामले के तथ्यों पर, प्रतिवादी संख्या 3 के खिलाफ कोई आरोप नहीं था कि वह काम की आदतन उपेक्षा का दोषी था।"

इसके अलावा श्रम न्यायालय ने पाया कि कर्मचारी की लापरवाही गंभीर किस्म की नहीं थी। फैक्ट्री के कुछ अन्य लोगों ने भी इसमें योगदान दिया था। इसलिए, हम बिंदु संख्या 2 को अस्वीकार करते हैं।"

औद्योगिक न्यायालय का क्षेत्राधिकार व्यापक होने के कारण और उसे सज़ा के बिन्दु पर हस्तक्षेप करने की शक्ति प्रदान की गई है, यह आरोपों की प्रकृति के अनुसार हो सकती है, ताकि इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि क्या प्रतिवादी ने अपने पद का दुरुपयोग किया है या उसके कृत्य उसके नियोक्ता द्वारा उसे दिए गए न्यास का भंग हैं।

18. यह सच हो सकता है कि नुकसान की मात्रा अधिक प्रासंगिक नहीं हो सकती है जैसा कि सुरेश पाथरेला बनाम ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स [(2006) 10 एससीसी 572] में माना गया है।, लेकिन वहां फिर एक सवाल उठा कि क्या वह ट्रस्ट के पद पर थे या नहीं।

19. इसके अलावा, हालांकि, प्रतिवादी 1987 से सेवा से बाहर है। वह पहले ही 20 वर्षों से अधिक समय तक सेवा से बाहर रहने के कारण बहुत कुछ झेल चुका है। सभी अदालतों ने उनके पक्ष में फैसला सुनाया है। इस प्रकार, हमें नहीं लगता कि यह एक उपयुक्त मामला होगा जहां हमें भारत

के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिये । बिना किसी खर्चे के यह अपील खारिज की जाती है

अपील खारिज।

चेतावनी : यह अनुवाद आर्टिफिशियल इन्टेलीजेन्स टूल 'सुवास की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी महेंद्र कुमार ढाबी, (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के लिए सिमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणित होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।